दैनिक जागरण
असफलता में भी भविष्य की सफलता के कई सूत्र छिपे होते हैं

भाजपा का गिरता ग्राफ

झारखंड में हार के साथ ही भाजपा के हाथ से एक और राज्य निकल गया। इसके पहले मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ में उसे पराजय का सामना करना पड़ा था। हाल में उसने हरियाणा में जैसे-तैसे सरकार अवश्य बना ली, लेकिन महाराष्ट्र में शिवसेना की बगावत से उसके खाते से एक और राज्य कम हो गया। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि बीते दो वर्ष में विधानसभा चुनावों में भाजपा का प्रदर्शन उसकी उम्मीदों के अनुकूल नहीं रहा है। गुजरात में उसे जैसे-तैसे बहुमत मिला था और कर्नाटक में वह सत्ता से चंद कदम पहले ही ठिठक गई थी। हालांकि बाद में वहां उसने येन-केन प्रकारेण सरकार बना ली। झारखंड में मुख्यमंत्री रघुवर दास पार्टी के विद्रोही उम्मीदवार सरयू राय से जिस तरह पिछड़ गए उससे भाजपा को कहीं अधिक चिंतित होना चाहिए और इस पर तो खास तौर पर गौर करना चाहिए कि राज्यों के चुनाव राष्ट्रीय मुद्दों अथवा राष्ट्रीय नेता के बलबूते नहीं जीते जा सकते। निःसंदेह राष्ट्रीय नेता और मसले एक हद तक असर करते हैं, लेकिन विधानसभा चुनावों में तो मतदाता इस पर ध्यान देते हैं कि उनकी आकांक्षाएं पूरी करने में कौन समर्थ है? प्रधानमंत्री मोदी को सुनने-सराहने वाले यह भली तरह जानते हैं कि राज्य का शासन तो किसी और को ही चलाना है।

यह सही है कि झारखंड के गठन के बाद पहली बार रघुवर दास के रूप में किसी मुख्यमंत्री ने पांच साल तक सरकार चलाई, लेकिन नतीजे यही बता रहे हैं कि जनता उन्हें एक और मौका देने को तैयार नहीं थी। इसकी एक वजह तो उम्मीदों का पूरा न होना ही हो सकती है और दूसरी, पार्टी के अंदर गुटबाजी और असंतोष। शायद इसी का नतीजा रहा कि एक बड़ी संख्या में भाजपा नेता विद्रोही उम्मीदवार के रूप में चुनाव में उतरे। रही-सही कसर इससे पूरी हो गई कि भाजपा अपने गठबंधन के सहयोगी संग मिलकर चुनाव नहीं लड़ सकी। झारखंड मुक्ति मोर्चा कांग्रेस और राजद से मिलकर भाजपा की राह रोकने में सफल रहा तो केवल इसलिए नहीं कि उसके नेतृत्व वाला गठबंधन कहीं अधिक मजबूत था, बल्कि इसलिए भी कि वह लोगों की नाराजगी का फायदा उठाने में सक्षम रहा। इसी के चलते भाजपा के कई मंत्री भी चुनाव हार गए। बेहतर हो कि भाजपा नेतृत्व इसकी तह में जाए कि राज्यों में उसके मंत्री इतने अक्षम क्यों साबित हो रहे हैं? उसे राज्यों में शासन-प्रशासन के कामकाज में बुनियादी बदलाव लाने के साथ ही इस पर भी ध्यान देना होगा कि असंतोष एवं गुटबाजी से कैसे बचा जाए? हार पर चिंतन का महत्व तभी है जब पार्टी की कार्यशैली में बदलाव भी दिखे।

विकास की राह

जम्मू कश्मीर अनुच्छेद 370 के खात्मे के बाद धीरे-धीरे शांति की राह पर लौट रहा है। गत दिनों वहां इतिहास में पहली बार वर्ष 2018 में पंचायत और 2019 में बीडीसी यानी खंड विकास परिषद के चुनाव हुए। अब जिला परिषद के चुनाव की बात भी हो रही है। उम्मीद थी कि इन चुनावों के बाद जम्मू कश्मीर के ग्रामीण आंचल में लोकतंत्र मजबूत होगा और गांव विकास की राह पकड़ेंगे। लेकिन ग्रामीण विकास की गति पंचायतों के खातों से न निकल पाने वाली धनराशि ने रोक दी। जम्मू कश्मीर के पंच-सरपंचों का दावा है कि मनरेगा के तहत एक हजार करोड़ रुपये बकाया जारी नहीं हो पा रहे हैं। वहीं पंचायतों के लिए 14वें वित्त आयोग द्वारा मंजूर की गई धनराशि का भी जमीन पर इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है। पंचायतों के विकास के लिए केंद्र 6700 करोड़ रुपये जारी करेगा। मगर अभी तक पंचायतों के खातों में एक हजार करोड़ रुपये ही पहुंचा है। इसकी निकासी के लिए अभी व्यवस्था ही नहीं बन पा रही है। केंद्र से अभी 5700 करोड़ रुपये अभी आने बाकी हैं। अगर सारा पैसा मिल जाए तो जम्मू कश्मीर की हर पंचायत को करीब डेढ़-डेढ़ करोड़ रुपये मिलेंगे। पैसा नहीं मिल रहा है। विकास नहीं हो पा रहा है। इसके लिए कौन जिम्मेदार है? आखिर किन कारणों से मनरेगा के बकाया फंसा हुआ है? यह सवाल उठने लाजिमी हैं। पंच, सरपंच मनरेगा के बकाया और 14वें वित्त आयोग द्वारा मंजूरी धनराशि पाने के लिए प्रदर्शन कर रहे हैं। सीधा प्रभाव गांवों के विकास पर पड़ रहा है। अगर सही में प्रशासन व सरकार जम्मू कश्मीर के विकास के लिए प्रतिबद्ध हैं तो योजना के तहत मंजूर पैसा भी तो जारी किया जाना चाहिए। सरपंचों की शिकायत है कि खातों में पहली बार आई राशि का भुगतान न होने से विकास नहीं कर पा रहे हैं। प्रशासन ने पंचायत में पंचायत सचिव व सरपंच के संयुक्त खाते खोले हैं। इसके लिए डिजीटल हस्ताक्षर का पंजीकरण न हो पाया है, जिस कारण सरपंच पैसे का भुगतान नहीं करवा पा रहे हैं। इससे पंचायत प्रतिनिधि ग्रामीण विकास विभाग के कामकाज से खुश नहीं हैं। प्रशासन और सरकार सही में ग्रामीण विकास को रफ्तार देना चाहते हैं तो कार्यप्रणाली में सुधार करना होगा।

जम्मू कश्मीर के पंच-सरपंचों का दावा है कि मनरेगा के तहत एक हजार करोड़ रुपये बकाया जारी नहीं हो पा रहे हैं। वहीं पंचायतों के लिए 14वें वित्त आयोग द्वारा मंजूर की गई धनराशि का भी जमीन पर इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है

खत्म होता आंदोलन और अराजकता का भेद

हृदयनारायण दीक्षित

आंदोलन राज और समाज को दिशा दे सकते हैं, लेकिन अराजकता आंदोलन को प्रभाव शून्य कर देती है

आंदोलन गैर जिम्मेदार राजनीतिक कर्मकांड नहीं हो सकते, क्योंकि वे तो जीवंत जनतंत्र की प्राण ऊर्जा होते हैं। आंदोलनकारी अपने विचार के पक्ष में लोकमत का परिष्कार और संस्कार करते हैं। ध्येयनिष्ठ आंदोलनकारी संविधान और विधि व्यवस्था को तोड़ने का काम नहीं करते। बीते कई दिनों में आंदोलन के नाम पर देश के विभिन्न हिस्सों में अरबों रुपये की संपदा आगजनी और तोड़फोड़ में स्वाहा कर दी गई। अकेले रेलवे को करीब 90 करोड़ रुपये की क्षति हुई। हिंसक विरोध प्रदर्शन के कारण 20 से अधिक लोग मारे गए और एक बड़ी संख्या में पुलिसकर्मी घायल हुए। इस हिंसा में तमाम सरकारी-गैर सरकारी वाहन भी फूंके गए और वह भी तब जब कई जगह सड़कों पर उतरे लोग गांधी, आंबेडकर आदि के पोस्टर भी लिए हुए थे। मार्क्सवादी चिंतक डॉ. रामविलास शर्मा ने ठीक लिखा है, 'गांधी, आंबेडकर, लोहिया वर्तमान भारत के राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलनों के लिए प्रासंगिक हैं। जो समाज व्यवस्था से असंतुष्ट हैं, उन्हें तीनों का अध्ययन करना चाहिए।' भारत के स्वाधीनता आंदोलन से दो उपलब्धियां हासिल हुईं। इसमें स्वाधीनता पहली उपलब्धि है। दूसरी उपलब्धि यह रही कि इस आंदोलन ने राष्ट्र को समाजसेवा, राष्ट्रभक्ति, त्यागपूर्ण राजनीति और अहिंसक जीवन मूल्य दिए। ये आदर्श जीवन मूल्य संजोकर रखे जाने वाले हैं। संविधान में मूल कर्तव्यों में भी कहा गया है कि 'स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखें और उनका पालन करें।' संविधान का अनुच्छेद 51 ए/बी कहता है कि 'सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा और हिंसा से दूर रहना' भी संवैधानिक कर्तव्य है, लेकिन हाल के कई आंदोलनों में ये आदर्श सिरे से गायब दिखे हैं। स्वाधीनता आंदोलन में जब विदेशी सत्ता से भारत का टकराव था तब भी आंदोलन आदर्श जीवन मूल्यों से प्रतिबद्ध था तो इसीलिए कि यह भाव प्रबल था कि आंदोलन की अपनी मर्यादा बनी रहनी चाहिए।

गांधी जी स्वाधीनता आंदोलन के निर्विवाद नेता थे। आंदोलन की धार तेज करने के लिए उन्हें सरकारी आदेशों की अवज्ञा का विचार आया। गांधी जी ने इसे 'सविनय अवज्ञा' आंदोलन कहा। मार्च 1940 में उनसे बार-बार पूछा जा रहे था कि सविनय अवज्ञा आंदोलन कब शुरू करेंगें? गांधी जी ने कांग्रेस कार्यसमिति में कहा, 'देश अभी सविनय अवज्ञा आंदोलन के लिए तैयार नहीं है। छोटी सी अनुशासनबद्ध कांग्रेस को लेकर मैं विश्व से लड़ सकता हूं, लेकिन कांग्रेस लचर है। सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया गया तो 'अवज्ञा' ही बचेगी, 'सविनय' लुप्त हो जाएगा।' गांधी जी के आंदोलन आदर्श में 'सविनय' महत्वपूर्ण था। अहिंसा और भी महत्वपूर्ण। उन्होंने कहा कि 'कांग्रेस के भीतर अनुशासनहीनता और हिंसा भरी है। ऐसे में सविनय अवज्ञा आंदोलन का एलान आत्महत्या जैसा होगा।' आंदोलन की हिंसा पर भी गांधी जी के विचार दो टूक थे। संपूर्ण गांधी वांग्मय के अनुसार गांधी जी ने कहा, 'तोड़फोड़ की कवायद और इसमें शामिल सभी बातें, संपत्ति का विनाश अपने आप में हिंसा है।'

अवधेश राजपूत

स्वतंत्र भारत के तमाम आंदोलनों में स्वाधीनता आंदोलन के राष्ट्रीय मूल्य नहीं दिखे। आंदोलन और अराजकता पर्यायवाची हो रहे हैं। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में राष्ट्रव्यापी संपूर्ण क्रांति आंदोलन (1975-1977) हुआ था। भ्रष्टाचार के विरुद्ध हुआ यह आंदोलन स्वाधीनता आंदोलन के आदर्शों से ओतप्रोत था। तब हम लोग नारा लगाते थे 'हमला चाहे जैसा भी हो, हाथ हमारा नहीं उठेगा।' तब अहिंसा का मूल्य ही आदर्श था। इसी आंदोलन के दौरान आपातकाल की घोषणा हुई। आपातकाल के तहत मौलिक अधिकार भी छिने, लेकिन आंदोलन ऐतिहासिक रूप में सफल रहा। आंदोलनों के सदाबहार नेता डॉ. राममनोहर लोहिया सविनय अवज्ञा को सिविल नाफरमानी कहते थे। उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह भी किए। सामाजिक मुद्दों पर उनके आंदोलन प्रगतिशील थे। अंग्रेजी हटाओ का विषय उनके आंदोलन के मूल में था। उनके आंदोलन का व्यवहार शास्त्र आदर्श था। नारा था कि गलत बात मानेंगे नहीं, मारेंगे भी नहीं। आंदोलन को जनतंत्र की मजबूती का हथियार बनाना ही राष्ट्र का प्रेय श्रेय है। कुछ साल पहले ही अन्ना हजारे के नेतृत्व में भी राष्ट्रव्यापी आंदोलन हुआ। आंदोलन को लेकर प्रतिबद्धता तो थी, लेकिन सार्वजनिक संपदा को क्षति पहुंचाने, पुलिस पर हमला करने, लोगों को भयभीत करने जैसी अराजकता नहीं थी।

आंदोलन राजनीतिक हमला नहीं होते। वे तो सत्ता और समाज का ध्यानाकर्षण होते हैं। मुद्दा आधारित सभी विमर्श आंदोलन हैं। सभा, जुलूस और प्रदर्शन आंदोलन के ही भिन्न रूप हैं। इधर कुछ विषयों पर मोमबत्ती लेकर भी जुलूस निकाले गए हैं। इनमें अतिरिक्त शालीनता रही है। आंदोलन राज और समाज को दिशा दे सकते हैं, लेकिन अराजकता आंदोलन को प्रभाव शून्य कर देती है। शालीन आंदोलनकारी जननायक दिखाई पड़ते हैं, अराजकता उन्हें जनता की नजरों में गिराती है। रूसी चिंतक साहित्यकार टॉल्सटॉय ने असहमति व्यक्त करने के लिए 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्द इस्तेमाल किया था। गांधी जी को 'पैसिव रेजिस्टेंस' या निष्क्रिय प्रतिरोध की भावना से प्रेम था। गांधी जी ने इसकी जगह पहले अंग्रेजी का सिविल डिसओबिडिएंस शब्द सोचा, लेकिन सबके परामर्श से सत्याग्रह शब्द चुना। गांधी जी से सीखा जा सकता है कि आंदोलन की संरचना के लिए नाम, मर्यादा, अहिंसा और ध्येय की भूमिका महत्वपूर्ण है।

राजव्यवस्था का जन्म और विकास ही अराजकता हटाने के लिए हुआ है। राजव्यवस्था संविधान के बंधन में है। आंदोलनकारी संविधानप्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार पाते हैं, लेकिन इस मौलिक अधिकार में भी लोक व्यवस्था के बंधन हैं। सुप्रीम कोर्ट ने इसीलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 को वैध ठहराया। डॉ. राममनोहर लोहिया ने इस धारा को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी थी। संप्रति धारा 144 पर हल्ला है। कई जाने-माने लोग यह ज्ञान दे रहे कि धारा 144 तो गैर कानूनी है और उसका लगना आपातकाल की आहट है। यह हास्यास्पद है।

डॉ. बीआर आंबेडकर भी आंदोलनकारी थे। उन्होंने प्रदर्शन आंदोलन के साथ लेखन से भी जनजागरण किया। उन्होंने 26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा के अंतिम भाषण में कहा था, 'यदि हमें लोकतंत्र को यथार्थ रूप में बनाए रखना है तो हम सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए दृढ़तापूर्वक संवैधानिक रीति अपनाएं। अवज्ञा आंदोलन का परित्याग करें। असंवैधानिक रीति अपनाना न्यायसंगत नहीं है। ये नीतियां अराजकता के अतिरिक्त और कुछ नही हैं।' आचार विहीन आंदोलन और अराजकता पर्यायवाची है। डॉ. आंबेडकर ने इन्हें अराजकता कहा था। आंदोलनों का कोई आचार शास्त्र तो होना ही चाहिए।

(लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

झारखंड में खुद से हारी भाजपा

अवधेश कुमार

भाजपा की हार का एक बड़ा कारण प्रदेश स्तर पर मोदी जैसे नेताओं का अभाव है, जो सूबे की कमान मजबूती से संभाल सकें

झारखंड विधानसभा चुनाव में हार के साथ ही भाजपा के हाथ से एक और राज्य की सत्ता फिसल गई। जहां जीत में कई कमियां छिपी रह जाती हैं वहीं हार की स्थिति में एक-दूसरे पर ठीकरा फोड़ने का सिलसिला शुरू हो जाता है। पराजित मुख्यमंत्री रघुवर दास इसकी अपनी वजहें गिना रहे हैं वहीं जीत के नायक बने झारखंड मुक्ति मोर्चा यानी झामुमो नेता हेमंत सोरेन भाजपा की नीतियों को दोष दे रहे हैं। उन्होंने कहा कि पहले भाजपा ने नोटबंदी के लिए लोगों को लाइन में लगाया और अब एनआरसी के जरिये फिर वही दोहराने की फिराक में है। वह अपनी जीत के लिए केंद्र सरकार को आड़े हाथ ले रहे हैं। क्या यह माना जा सकता है कि नागरिकता कानून और संभावित एनआरसी के अलावा उस नोटबंदी का भी भाजपा की इस हार में योगदान रहा जिसे अतीत में उसकी कई जीतों का श्रेय दिया गया था? प्रधानमंत्री मोदी और गृहमंत्री अमित शाह ने राष्ट्रीय महत्व के कई मुद्दे विधानसभा चुनाव में प्रखरता से उठाए। इनमें नागरिकता संशोधन कानून, अयोध्या में मंदिर निर्माण, तीन तलाक कानून और अनुच्छेद 370 को खत्म करने जैसे मसले शामिल थे। इन पर यदि आज भी राज्य में सर्वेक्षण करा लिया जाए तो शायद उनके पक्ष में बहुमत मिलेगा। कहने का तात्पर्य यह कि ये मुद्दे चुनाव में थे जरूर, लेकिन केवल यही हार का कारण नहीं बने।

भाजपा की हार की वजहों में सबसे बड़ी वजह यह रही कि उसके समानांतर झामुमो, कांग्रेस और राजद का एक मजबूत गठबंधन बना। इससे भाजपा विरोधी मतों में बिखराव नहीं हुआ। झामुमो ने अपने लिए अधिकांश ग्रामीण और कांग्रेस को शहरी सीटें देकर अच्छा रणनीतिक प्रयोग किया। आजसू से भाजपा का गठबंधन न होने का भी कुछ असर हुआ, किंतु ये सब भी उतने प्रभावी नहीं। झारखंड के जनादेश को समझने के लिए हमें बीते दिनों हरियाणा और महाराष्ट्र के नतीजों पर भी नजर डालनी होगी। हालांकि तीनों राज्यों की राजनीतिक स्थिति और सामाजिक-जातीय समीकरण बिल्कुल अलग हैं, लेकिन भाजपा के लिए कुछ कारक यहां एकसमान रहे। जैसे हरियाणा में भाजपा के 16 बागी उम्मीदवार थे जिनमें से छह जीत भी गए और शेष ने भाजपा को हराने में भूमिका अदा की। महाराष्ट्र में भी पार्टी के 50 से अधिक बागी उम्मीदवार चुनावी रण में थे। झारखंड में भी इस बार भाजपा के 50 से अधिक विद्रोही चुनावी मैदान में थे। खुद मुख्यमंत्री के खिलाफ उनकी कैबिनेट में मंत्री रहे सरयू राय ताल ठोंक रहे थे। वह जीत भी गए। भाजपा के पूर्व प्रदेश अध्यक्ष भी बागी उम्मीदवार बने। एक उदाहरण देखें: संथाल परगना में भाजपा और झामुमो के बीच हमेशा कांटे की टक्कर रही है जिसमें भाजपा अच्छा प्रदर्शन करती रही है। यहां की 16 सीटों से भाजपा के 11 विद्रोही खड़े थे। इतनी संख्या में कहीं भी विद्रोही खड़े हो जाएं तो फिर पार्टी के लिए बेहतर प्रदर्शन करना मुश्किल है। आखिर इतनी संख्या में विद्रोही क्यों खड़े हुए? पार्टी में इतने व्यापक असंतोष के क्या कारण थे? पांच साल की भाजपा सरकार में किसी बड़ी गड़बड़ी या घोटाले की कोई खबर नहीं आई। स्थानीय लोग बताते रहे कि केंद्र की योजनाएं जमीन तक पहुंची हैं। सड़क, बिजली और पानी की व्यवस्था बेहतर हुई। प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत घर बने। किसान सम्मान निधि तो किसानों तक पहुंची ही, प्रदेश सरकार ने भी मदद की। इन सबसे बढ़कर माओवादी हिंसा में व्यापक कमी आई, फिर भी नतीजा प्रतिकूल रहा।

जो लोग आदिवासी और गैर आदिवासी की बात कर रहे या छोटा नागपुर टिनेंसी एक्ट को हार की वजह बता रहे वे इन क्षेत्रों में भाजपा को मिले मतों पर गौर करें। यह ठीक है कि धर्मांतरित आदिवासियों का मत एकमुश्त भाजपा के खिलाफ गया और चर्च की भी भूमिका रही, मगर ये कारक पहले भी रहे हैं। हार के असल कारणों की तलाश करें तो यही सार निकलेगा कि भाजपा स्वयं से हारी है। प्रधानमंत्री मोदी ने 2014 से राज्यों के मुख्यमंत्रियों के रूप में लीक से हटकर प्रयोग किए। इसी कड़ी में महाराष्ट्र में गैर मराठा देवेंद्र फड़नवीस, हरियाणा में गैर जाट मनोहरलाल और झारखंड में गैर आदिवासी रघुवर दास को मुख्यमंत्री बनाया। लगता है कि इस प्रयोग की भी पार्टी को कुछ कीमत चुकानी पड़ी। रघुवर दास को लेकर आंतरिक असंतोष की खबरें भी गाहे-बगाहे आती रहीं। यह शिकायत भाजपा शासित दूसरे राज्यों में भी आम देखी गई है कि राज्य ईकाई में सिरफुटौव्वल के बावजूद नेता और कार्यकर्ता राष्ट्रीय चुनावों में मोदी के नाम पर एकजुट हो जाते हैं। इससे पहले हरियाणा में भी यही दिखा, जब भाजपा के अधिकांश मंत्री चुनाव हार गए। मंत्रियों के अलावा भाजपा अध्यक्ष तक की दुर्दशा बताती है कि राज्य में नेतृत्व को लेकर कितना गहरा असंतोष था। कहा जा रहा है कि भाजपा कार्यकर्ताओं का एक बड़ा हिस्सा रघुवर दास के बजाय सरयू राय के पीछे लामबंद था। ऐसे आंतरिक असंतोष को लेकर भाजपा नेतृत्व को गंभीर आत्ममंथन करना होगा, अन्यथा भविष्य में उसके लिए और मुश्किलें बढ़ सकती हैं।

हार के कारणों पर थोड़ी और गहराई से विचार करने पर और कुछ पहलू भी सामने आते हैं। पीएम मोदी ने अपने चुनावों में जातीय एवं क्षेत्रीय कारकों को एक हद तक कमजोर किया है। वह राष्ट्रीयता से जुड़ा माहौल बनाकर स्थानीय अस्मिता को भी राष्ट्रीय धारा की ओर मोड़ने में काफी हद तक सफल हुए, मगर इनका लाभ लोकसभा चुनाव में ही अधिक मिलता दिखा है। ऐसे में भाजपा की हार का एक बड़ा कारण प्रदेश स्तर पर मोदी जैसे नेताओं का अभाव है जो राज्य की मजबूती से कमान संभाल सकें। झारखंड के गैर आदिवासी मुख्यमंत्री के रूप में रघुवर दास का दायित्व था कि वह ऐसा परिवेश बनाते जिसमें सभी तबकों को लगता कि वह सभी जातियों-समुदायों के नेता हैं। इस तरह के लक्ष्य से काम करने वाली सरकार का चरित्र भी थोड़ा भिन्न होता है। ऐसे में सरकार एवं संगठन के बीच पूरी तरह समन्वय भी कायम रहता है और इससे उस असंतोष की चिंगारी भी नहीं भड़कती जो अक्सर सत्ता के ख्वाब को स्वाहा कर देती है।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ पत्रकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

सुख-दुख

मनुष्य जीवनपर्यंत तमाम दुखों से जूझता रहता है। इन दुखों से मुक्ति पाने एवं सुख की ओर कदम बढ़ाने में मनुष्य तमाम उपाय करता है। इसके बावजूद प्रायः सफलता मिलनी मुश्किल प्रतीत होती है। यह भी एक विडंबना है कि दुखों से पीछा छुड़ाकर कुछ ही लोगों को सुखों की प्राप्ति हो पाती है। साथ ही यह भी तय नहीं कि सुखों की अवधि कितनी लंबी रहेगी और इसके बाद जीवन में दुख फिर कभी दस्तक ही नहीं देंगे। सुख रूपी मृगमरीचिका की तलाश में अधिकांश लोगों की झोली अतृप्ति, असंतोष, अभाव, असफलता और उनसे उपजे अवसाद से ही भरी होती है। लोग भटकते तो सुख की प्राप्ति के लिए हैं, परंतु कभी-कभार ही इसमें सफलता मिल पाती है। प्रत्येक व्यक्ति की यही पीड़ा और वेदना है। सुख की तलाश मे भटकते लोग यह भूल जाते हैं कि दुख कहीं बाहर से नहीं आता, बल्कि उसका स्रोत प्रायः हमारे भीतर ही होता है। चाहे हम कितना भी दुखों के कारणों को कहीं बाहर ढूंढना चाहें, लेकिन उनके लिए कहीं न कहीं हम स्वयं जिम्मेदार होते हैं। ऐसे में यदि समस्या स्वजनित है तो उसके समाधान के लिए उपाय भी स्वयं ही तलाशने होंगे। ये समाधान परिस्थितियों को बदलने से नहीं, मनःस्थिति को बदलने से संभव होते हैं। दुखों से मुक्ति पाने के लिए इस दृष्टिकोण को गहराई से आत्मसात करना होगा। हमें समझना होगा कि अपने साथ उत्पन्न हुई समस्याओं के लिए मैं स्वयं उत्तरदायी हूं। बाहर जो घटता दिखता है, वह भीतर की छायामात्र है। हमें स्वयं से जुड़ी वास्तविकताओं को समग्रता में स्वीकार करना होगा। सुख हो या दुख, आनंद हो या विषाद, यश हो या अपयश ऐसे ही तमाम भावों को समझकर उनका सही मर्म आत्मसात करना होगा।

याद रखें कि जीवन में अहम परिवर्तनों को केवल वही मूर्त रूप दे सकते हैं जो स्वयं जिम्मेदारी लेना जानते हों। इसमें दूसरों पर निर्भरता कभी उपयोगी नहीं हो सकती। यानी अपने जीवन में बदलाव लाना है तो यह किसी अन्य के माध्यम से नहीं, बल्कि अपने प्रयासों से ही संभव है।

आशा शर्मा

पूरे देश में एक ही दिन सैलरी

मीनाक्षी भटनागर

देश भर में एक दिन सैलरी दिए जाने से नौकरीपेशा वर्ग को काफी राहत मिलेगी। अभी अनिश्चितता रहती है

औपचारिक क्षेत्र, विशेष रूप से श्रमिक वर्ग में श्रमिकों के हित की रक्षा के लिए केंद्र सरकार 'वन नेशन, वन पे डे' (एक देश, एक ही वेतन का दिन) प्रणाली शुरू करने की योजना बना रहा है। इस व्यवस्था के तहत हर सेक्टर में सभी वर्ग के कर्मचारियों और मजदूरों को एक दिन सैलरी मिल सकेगी। इससे देश के करीब 50 करोड़ श्रमिकों को इसका फायदा मिलेगा। इससे मासिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों को अगले महीने की 7 तारीख तक वेतन मिलेगा, वहीं जो लोग साप्ताहिक आधार पर काम कर रहे हैं उन्हें हफ्ते के आखिरी दिन और दैनिक कामगारों को उसी दिन पारिश्रमिक मिलना सुनिश्चित होगा।

'वन नेशन, वन पे डे' व्यवस्था के लागू होने से हर सेक्टर में काम कर रहे कर्मचारियों और मजदूरों को एक दिन ही सैलरी मिला करेगी। देश भर में एक दिन सैलरी दिए जाने से नौकरीपेशा वर्ग को काफी राहत मिलेगी। अभी कई क्षेत्रों में वेतन मिलने की तिथि को लेकर अनिश्चितता रहती है। इससे नौकरीपेशा लोगों को कई तरह की परेशानी झेलनी पड़ती है। वे अपने दैनिक जरूरतों को पूरा करने के बारे में फैसले लेने से हिचकते हैं। यह आर्थिक असुरक्षा उनके कामकाज पर असर डालती है। इसका भी उनके कामकाज पर असर पड़ता है। जब सैलरी का दिन तय हो जाएगा तो कामकाजी वर्ग के भीतर एक तरह की सुरक्षा की भावना रहेगी। सैलरी को लेकर असमंजस की स्थिति खत्म हो जाएगी। लोग अपने तमाम खर्च को लेकर योजनाएं बना सकेंगे। इससे उन्हें बचत और निवेश करने में भी सहूलियत होगी। हाल में एक रिपोर्ट आई थी जिसके अनुसार अधिकांश लोग ईएमआइ चुकाने में देरी इसलिए करते हैं, क्योंकि उन्हें समय पर वेतन नहीं मिलता है।

उम्मीद है कि जब इस संबंध में कानून बन जाएगा तो कंपनियां भी वेतन देने में टालमटोल नहीं कर पाएंगी। एक लोककल्याणकारी राज्य की अवधारण भी कहती है कि नौकरीपेशा लोगों के वेतन में ज्यादा अंतर नहीं होना चाहिए। हर मजदूर को इतना पैसा जरूर मिलना चाहिए कि वह उससे अपने तथा अपने परिवार के लिए जरूरी सुविधाएं आसानी से जुटा सके। हालांकि यह सही है कि सरकार यूनिफॉर्म मिनिमम वेज प्रोग्राम को लागू करने की दिशा में भी काम कर रही है, ताकि मजदूरों की जिंदगी में सुधार हो सके।

इसके अलावा कामकाजी वर्ग को दूसरी कई सुविधाएं देने के लिए सरकार व्यावसायिक सुरक्षा, हेल्थ एंड वर्किंग कंडीशन कोड, कोड ऑन वेजेज को लागू करने जा रहा है। संसद से कोड ऑन वेजेज को पहले ही स्वीकृति मिल चुकी है और अब इसके नियमों पर काम चल रहा है। हेल्थ एंड वर्किंग कंडीशन कोड भी 13 श्रम कानूनों को मिलाकर तैयार किया जा रहा है। इसके अलावा इसमें कई और प्रावधान भी जोड़े गए हैं। जैसे कि हर कर्मचारी को नियुक्ति पत्र, हर साल मुफ्त हेल्थ जांच जैसी सुविधाएं देने की बातें इसमें शामिल की गई हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि इन बदलावों से देश के सामाजिक-आर्थिक हालात में अहम सुधार देखने को मिलेगा।

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

दुष्प्रचार है आंतरिक सुरक्षा के लिए समस्या

आंतरिक सुरक्षा के समक्ष नई समस्या शीर्षक आलेख में सी उदयभास्कर ने राष्ट्रीय सुरक्षा की आवश्यकताओं को समझे बिना सरकार को नागरिकता संशोधन कानून तथा राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर के मुद्दों पर घेरने की कोशिश की है। क्या लेखक को पता है कि जहां-जहां कश्मीर जैसी पत्थरबाजी उत्तर प्रदेश या दिल्ली में हुई, वह स्वतः स्फूर्त नहीं थी। उनका प्रारंभ बाहर से आए पेशेवर गुंडों ने किया। वे पत्थर फेंकना और आगजनी कर गायब हो गए। मेरा प्रश्न है कि जबकि सर्वोच्च न्यायालय दोनों मामलों में संवैधानिकता तय करने के प्रश्न को अपने हाथ में ले चुका है, फिर उन्हें सड़कों पर विरोध, और वह भी सार्वजनिक संपत्ति जलाने वाला हिंसक विरोध करने की जरूरत क्या है? क्यों नहीं शांत रहकर कोर्ट के निर्णय की प्रतीक्षा करते? रामजन्मभूमि पर क्या यही लोग रामभक्तों को धैर्य से प्रतीक्षा का उपदेश नहीं दे रहे थे? उच्चतम न्यायालय ने जामिया मिलिया की याचिका ठुकराते हुए ठीक ही कहा कि पहले हिंसा बंद कीजिए, उसके बाद ही सुनवाई होगी। विरोधी लोग न्यायपालिका को तो सुनें, अनुपालन करें। आश्चर्य की बात है कि लेखक ने भी इस बिंदु का उल्लेख भी नहीं किया है। वह यह बात भी नहीं बताते हैं कि घुसपैठियों को देश में बनाए रखने से उत्पन्न आंतरिक सुरक्षा के खतरे से कैसे निपटा जाएगा?

अजय मित्तल, मेरठ

सराहनीय फैसला

जब आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी तो हिंदू, मुस्लिम, सिख, बौद्ध, जैन सभी ने तन, मन, धन से अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी। तब उन्होंने नहीं सोचा कि यह देश बंटेगा, वह भी पंथ के आधार पर। सभी ने एक ही सपना देखा था कि हमारा देश आजाद होगा। हमारा अपना शासन होगा। देश तरक्की के पथ पर चलेगा और हमारी संतानें सुखी रहेंगी। इस आंदोलन में उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम अर्थात सभी क्षेत्र के लोग शामिल हुए। देश आजाद हुआ व दुर्भाग्य से पंथ के आधार पर पाकिस्तान अलग हुआ। पाकिस्तान मुस्लिम देश बना, जबकि भारत पूर्व की भांति सभी के लिए समान रहा। पंथ के आधार पर पाकिस्तान बनने से वहां के अल्पसंख्यकों पर अत्याचार शुरू हो गए। फलतः हिंदू, सिख, जैन बौद्धों में से अधिकांश ने उसी समय पाकिस्तान छोड़ दिया। वैसे लोग जो अशिक्षित थे, ग्रामीण, गरीब पृष्ठभूमि से थे, उन्हें समझ नहीं आया कि क्या हो गया। ऐसे लोग पाकिस्तान में रह गए। इसमें अधिकांश लोग सफाई का कार्य करने वाले थे। इसी वजह से उनको रोका भी गया। बाद में इन पर अत्याचार शुरू हो गया। पंथ परिवर्तन कराना, पढ़ने लिखने से रोकना, जबरदस्ती सफाई व मजदूरी करवाना आदि अनेक प्रकार के अमानवीय कृत्य इन पर किए गए। क्या उनके पूर्वजों ने आजादी के साथ सुख समृद्धि के सपने नहीं देखे थे? जब पूरी दुनिया मानवाधिकार की चर्चा कर रही हो तो फिर पाकिस्तान, बांग्लादेश व अफगानिस्तान में दूसरे मजहब के लोगों को जलालत की जिंदगी से उबरने का अधिकार नहीं होना चाहिए क्या? नेहरू-लियाकत समझौता हुआ था कि दोनों देश अपने अल्पसंख्यकों को समानता के आधार पर रखेंगें। हमने खयाल रखा, उन्होंने रखा क्या? फिर वे लोग कहां जाएंगे? सरकार का फैसला सराहनीय है।

kumaranil1570@gmail.com

सवाल बेवजह नहीं

उन्नाव मामले में अभियुक्त को दी गई सजा इंसाफ की मिसाल बन सकती है। फिर भी हर बार की तरह सवाल करने वाले तो हर नुक्कड़ पर मिलेंगे जिसकी वजह बेवजह नहीं है। झारखंड में महिला की लाश मिली, सुराग मिले, हत्यारा मिला फिर भी न्याय न मिला। सुबूतों और गवाहों की बैसाखी पर खड़ा न्याय हत्यारोपी के पक्ष में झुक गया, जबकि निर्भया कांड आज भी कानून की डोर से बंधे तारीखों के झूले में हिचकोले खा रहा है। सात साल में देश के कानून ने अभियुक्तों को विकल्प दर विकल्प दे कर पीड़िता के अभिभावकों को मुक्कदर के हवाले छोड़ दिया है। अदालतों की सीढ़ियों पर चढ़ते-फिसलते पीड़ित के थके माता-पिता म